ओ३म्

जैन प्रकाश पुस्तक माला का तीसरा पुष्प ।

मिल के वस्त्र और जैन-धर्म

रोहतक निवासी
श्रीमान् लाला जोतराम जी शेरसिंह जी
की सुपुत्री
श्रीमती चन्द्रवती देवी
की ओर से सप्रेम भेंट ।

लेखक —

पं० शंकरप्रसाद दीक्षित,

प्रकाशक—
श्रीजैन प्रकाश पुस्तकालय,
सुजानगढ (बीकानेर)

१००० प्रति] सम्वत् १९८८ [मूल्य सदुपयोग

जैन धर्म की अपूर्व पुस्तकें ।

(१) अनुकम्पा विचार—रचयिता श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जवाहिरलाल जी महाराज मूल्य ।।)

(२) शालिभद्र चरित्र प्रथमभाग—राधेश्याम रामायण की तर्ज में मूल्य =)

(३) शालिभद्र चरित्र दूसराभाग राधेश्याम रामायण की तर्ज में मूल्य =)

(४) जैन धर्म मे मातृ पितृ सेवा— मूल्य -)

प्राप्ति स्थान—

छोटेलाल यति,

सचालक जैन प्रकाश पुस्तक माला,

सुजानगढ़ बीकानेर।

B K & R

भूमिका

जैन धर्म के जिन सिद्धान्तों को सारा संसार आदर की दृष्टि से देखता है, जिन सिद्धान्तों की महात्मा गाधी ने भूरि भूरि प्रशंसा की है और अपने आप को उनके समर्पण कर दिया है जिन सिद्धान्तों के बल पर अशक्त-भारत आज पाशविक-बल सम्पन्न ब्रिटेन का सामना कर रहा है—दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि उन सिद्धान्तों का अपमान प्रायः वेही लोग कर रहे हैं, जो अपने आप को इन सिद्धान्तों का अनुयायी मानते हैं। जहां, इन सिद्धान्तों का न मानने वाले लोग इन्हें अपना रहे हैं—इन के समीप होते जाते हैं वहीं इन सिद्धान्तों को मानने वाले लोगों में से इनके नाम से पहिचाने जाने वाले जैन लोगों में से कई इनकी अवहेलना कर रहे हैं। जैन नाम धरा कर, भगवान महावीर के अनुयायी होकर, उन्हीं के बतलाये हुए सिद्धान्तों को केवल थोड़े से लोभ के लिये, थोड़ी सी मौज के लिये ठुकरावें—यह कितने दुःख की बात है ? आज सारा संसार जाग्रत हो उठा है, लेकिन जैन धर्मानुयायी लोगों में से कई अभी नींद में ही पड़े हैं। वे आखें खोल कर यह देखने की भी आवश्यकता नहीं समझते, कि हमारी सम्पत्ति से दूसरे किस प्रकार लाभ उठा रहे हैं और उस सम्पत्ति के उपयोग से हम किस तरह पिछड़ रहे हैं।

इस समय भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक, विदेशी वस्तुओं के वायकाट की धूम मची हुई है। यह धूम राजनैतिक कारण से है, लेकिन क्या धार्मिक कारण से विदेशी वस्तुएं त्याज्य नहीं हैं? यदि सम्यक् प्रकार से विचार किया जावे, तो मालूम होगा कि धार्मिक कारण को लेकर भी विदेशी वस्तुएं ग्राह्य नहीं किन्तु त्याज्य हैं, और उनका उपयोग करना या व्यापार करना पाप है। विदेशी वस्तुओं का उपयोग में लाकर या उनका व्यापार करके जैन धर्म के सिद्धान्तों का सम्मान नहीं किन्तु अपमान करना है। यह छोटासा ट्रेक्ट जो आपके हाथ में है, इसे आद्योपान्त पढ़ने पर आप स्वयं समझ लेंगे, कि अन्य विदेशी वस्तुएं तो दूर रहीं केवल विदेशी मशीनों से बना हुआ मिल और उसका वस्त्र ही जैन धर्म के सिद्धान्तों का किस प्रकार घातक है।

इस ट्रेक्ट में प्रत्येक बात मिल का कपड़ा पहिनने वाले के लिये कही गई है। मिल मालिकों, साझादारों और मिल के कपड़े का व्यापार करने वालों के लिये पृथक् कुछ नहीं कहा गया है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि केवल मिल का कपड़ा पहिनना ही बुरा-पाप हो, मिल की स्थापना, उस में साझा या उसके कपड़े का व्यापार बुरा पाप न हो। यदि पहिनने वालों के सिवाय शेष लोगों के अर्थात् बनाने बनवाने या बेचने वालों के लिये पाप न माना जावेगा तो इसका अर्थ यही होगा कि पाप केवल मांस खाने वाले के लिये है, बकरा मारने वाले और मांस बेचने

वाले को नहीं, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता। इसलिये जो बात मिल के कपड़े पहिनने वालों के लिय कही गई है, वही बात मिल के कपड़े बनवाने और उनका व्यापार करने वालों के लिये भी समझनी चाहिए।

इस छोटे से ट्रेक्ट द्वारा, जैन भाइयों को यदि कुछ लाभ पहुंचा, उन्होंने विदेशी वस्तु और विशेषत मिल के वस्त्रों को काम में लाना तथा उनका व्यापार करना छोड़ दिया, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

बिजुलपा
(बाराबकी)
ज्येष्ठी पूर्णिमा १९८८

—लेखक

मिल के वस्त्र और जैन धर्म ।

——०%०——

जैनधर्म अहिंसा प्रधान धर्म है । इस धर्म का न उ अहिंसा है। अहिंसा प्रधान होने क कारण, जैन धर्म एसा किसी बात का समर्थन नहीं करता, जिस में हिंसा और विशेषत पचेन्द्रिय जीवों का हिंसा होती है । निरारम्भ होना या महारम्भ को मिटाकर अल्पारम्भी होना ही जैन धर्म का मुख्य उद्देश्य है और अहिंसा ही जैन धर्मानुयायियों का मूल मन्त्र मूल सिद्धान्त तथा प्रथम धन है।

यह तो स्पष्ट है कि कारखानों की स्थिति महारम्भ पर है। पहिले तो लोहे आदि धातु क लिये, जिन स एंजिन कल मशीनें आदि बनती हैं—जमीन खोदी जाती है जिस में कि पृथ्वीकाय के असंख्य जीवों की हिंसा होती है। फिर उन्हें मशीन की शकल में बनाने के लिये अपकाय, तजूकाय और वायुकाय के असंख्य असंख्य जीवों की हिंसा होती है। क्योंकि अग्नि की सहायता स लोहे को गलाया जाता है तथा जल की सहायता से उसे बुझाया जाता है। इन दोनों में जीवों की हिंसा होती है। साथ ही, अग्नि से होने वाले धुएं स वायुकाय क गर्म लोहे क तुल जाने आदि से मनुष्यों क प्राण तक भी

चले जाते हैं। इस प्रकार मशीनों के बनाने में ही महान हिंसा होती है।

मशीनों के बन जाने पर, जब उन्हें मिल का रूप दिया जाता है, तब भी महान हिंसा होती है। जैसे एंजिन में जलाने के लिये कोयले या लकड़ी की प्राप्ति में पृथ्वीकाय या वनस्पतिकाय के जीवों की हिंसा होती है। मशीनों को चलाने के लिये भाप बनाने में, जलकाय के जीवों की हिंसा होती है। एंजिन के धुएँ से और मशीनों के घूमने से वायुकाय के जीवों की हिंसा होती है।

इतनी हिंसा तो एकेन्द्रिय जीवों की ही हुई। अब जरा पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा भी सुन लीजिये।

मिल के बने हुए, लगभग सभी वस्त्रों में पशुओं की चर्बी लगी रहती है। बहुत से मिलवाले यह अवश्य कहते हैं कि हमारे मिल के बने वस्त्रों में चर्बी नहीं लगी है, लेकिन पहिले तो ऐसा कहने वालों में से बहुत से लोग ऐसे निकलेंगे जो अपना व्यापार बढ़ाने के लिये केवल यह कहकर लोगों को धोखा देते हैं। दूसरे जो लोग चर्बी नामधारिणी वस्तु को कपड़े में न लगाते होंगे, वे चर्बी के स्थान पर दूसरी किसी विलायती वस्तु का प्रयोग करते होंगे। ऐसी विलायती वस्तु के लिये, यह दावे के साथ कौन कह सकता है कि इस में चर्बी नहीं है? इस प्रकार जो लोग यह कहते हैं कि हमारे मिल के वस्त्र में चर्बी नहीं लगी है, उन की बात यदि सर्वथा अविश्वास के योग्य नहीं, तो सन्देहास्पद अवश्य है।

हाँ तो, इन मिल के वस्त्रों में पशुओं की चर्बी लगी होती है। उस चर्बी के लिये, सैकड़ों हजारों नहीं, किन्तु लाखों करोड़ों पशुओं का निर्दयता पूर्वक वध किया जाता है। दूसरे, मिल में लगने वाले पट्टे आदि चमड़े की चीजों के लिये भी लगभग इतने ही पशु मारे जाते हैं। वे किस तरह मारे जाते हैं, और उस समय का हृदय विदारक दृश्य कैसा होता है, इस का वर्णन करना सरल कार्य नहीं है। एक लेखक के कथनानुसार, पशुओं को कई दिन तक भूखा मारा जाता है। पश्चात उन्हें एक झाड़ से ऊँचा मुँह करके बांध दिया जाता है, और उन्हें इतना पीटा जाता है कि शरीर की चर्बी, हड्डियों से निकल कर चमड़े में आ जाय। जब देख लिया जाता है कि इनकी सब चर्बी चमड़े में आ गई, तब उन्हें हरा हरा घास दिखाया जाता है। कई दिन के भूखे पशु, उस हरी हरी घास को देख कर प्रसन्न हो उठते हैं। इस प्रसन्न होने से, हड्डियों से निकल कर चमड़े में आई हुई चर्बी सारे शरीर के चमड़े में समान रूप से फैल जाती है। प्रसन्न होकर वे घास की तरफ मुँह लम्बा करते हैं, बस ! इस लम्बी गर्दन पर छुरा पड़ जाता है और सिर धड़ से जुदा हो जाता है। मामूली तरह पशुओं को न मार कर इस तरह इस लिये मारा जाता है कि जिस में चर्बी मिश्रित नरम चमड़ा प्राप्त हो। क्योंकि पट्टे आदि में कड़ा चमड़ा काम नहीं देता, किन्तु नरम चमड़ा काम देता है। कड़ा चमड़ा, टूट जाता है।

यह हुई मिल के लिये पशु हिंसा। अब जरा मनुष्य हिंसा पर भी विचार करिये।

मिलों में प्रति वर्ष कई मनुष्य जान से मर जाते हैं। कई काने, अंधे, लगड़े और लूले हो जाते हैं। मिल में काम करने वाले प्राय सब मजदूर ऐसे कमजोर हो जाते हैं कि मिल में काम न करने पर जहा वे ६० वर्ष संसार में जीवित रहते, वहा मिल में काम करने के कारण वे ४० वर्ष की अवस्था में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर देते है। दिन भर मिल का नर्क भोग कर, रात को वे लोग थकावट मिटाने के लिये शराब पीते हैं, जो जीवन के लिये और भी घातक है। यदि मिल न हों, तो मिल द्वारा मरने वालों को न तो मरना ही पड़े और न अंधे, काने, लगड़े लूले होने वालों को अंध, लूले लगड़े ही होना पड़े। इसी तरह न तो वे शराबी बने ही और न उनको शराब ही पीने की आवश्यकता हो।

मिल में काम करने वाले अधिकांश मजदूर, ग्रामीण होते हैं। वे मिल में काम करने के लिये, ग्रामों से अनेक प्रलोभन देकर लाये जाते हैं। यहा आने पर उनका शुद्ध जीवन, हर प्रकार से कलुषित जीवन में परिणत होजाता है। ग्रामों में रह कर जहा वे दूध, दही, छाछ आदि खाते पीते थे, वहाँ नगर में आकर, वे शराब गाजा चर्स आदि पीने लगते है। यदि वे तम्बाकू पीते हुए, तो चिलम के स्थान पर सिगरेट, बीडी चुरट पीने लगते हैं। जहा वे अपनी रूखी सूखी रोटियों में आनन्द मानते थे, वहाँ उन्हे अब शराब को दबाने के लिये मास खाना पड़ता है। ग्रामों में वे शुद्ध और स्वास्थ्यदायिनी हवा का सेवन करते थे, परन्तु यहा गन्दी और स्वास्थ्यनाशिनी हवा लेनी पड़ता है। वहाँ वे पराई स्त्री को देखने में भी पाप मानते थे, परन्तु यहाँ वेश्यागमन उनका नित्य का कर्त्तव्य

हो जाता है। ग्रामों में व खुली हवा में बने हुए फूस के प्रशस्त झोंपड़ों में रहते थे, परन्तु नगर में आकर उन्हें मकान के उस नीचे के हिस्से में रहना पड़ता है, जहां हवा का प्रवेश भी नहीं है। जगह भी इतनी तंग और गन्दी होती है, कि वैसी तंगी और गन्दगी नर्क में भी शायद ही भुगनी पड़ता हो।

तात्पर्य यह कि मजदूरों का शुद्ध और स्वस्थ जीवन, कलुषित और अस्वस्थ जीवन में परिणत हो जाता है। जिसके कारण से पाप तो बढ़ता है, और आयु घटती है। ऐसा होने का कारण भी मिल ही हैं, इस लिये इस मनुष्य हिंसा का श्रेय भी मिल के वस्त्रों का उपयोग करने वाले को ही हो सकता है।

मिलों द्वारा दूसरी मनुष्य हिंसा है, मनुष्यों के भात पानी विच्छेद की। मिल के न होने पर, कपड़ों के कारण से हजारों लाखों और करोड़ों आदमी अपनी आजीविका चलाते थे। कपास ओट कर, रुई धुनक कर, पूनी बनाकर, चर्खा कातकर और कपड़ा बुनकर करोड़ों आदमी अपना तथा अपने कुटुम्बियों का पालन पोषण करते थे। लाखों विधवायें पति के मरने पर अस्सहाय बनकर चर्खे की शरण लेती थीं, और चर्खा उनकी जीवन-नौका को पार लगाता था। लेकिन मिलों ने इन सब की आजीविका बन्द करदी। करोड़ों मनुष्य की रोज़ियें, केवल थोड़े से मिल मालिकों ने छीन ली और उन बेचारों को भूखों मरते हुए बिल बिलाने के लिये छोड़ दिया। इस तरह मिलों से मनुष्यों के भात पानी विच्छेद की हिंसा होती है।

साराश यह कि मिलों में महारम्भ द्वारा असंख्य जीवों की हिंसा होती है, तब कहीं मिल का कपड़ा बनता है। जैनधर्म ऐसे महारम्भ और महाहिंसा का कदापि समर्थन नहीं करता। इस लिये, मिल के कपड़ों को काम में लाने वाले जैन लोग, जैनधर्म के मूल सिद्धान्त मूल व्रत अहिंसा का प्रत्यक्ष ही उल्लंघन करते हैं। मिल के कपड़े पहिनने वाले जैन धर्मानुयायियों के लिये, यदि यह कहा जावे कि वे एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीवों की हिंसा का समर्थन करते हैं, तो कोई अत्युक्ति न होगी।

यहां कोई यह कह सकता है कि मिल के बने हुए कपड़ों को बहुत लोग पहिनते हैं इस लिये मिल की हिंसा का पाप बहुतों में बट जाता है और हमारे हिस्से में उस पाप का बहुत कम भाग आता है। पहिले तो ऐसा कहने वालों को यह बात तभी कहनी चाहिये, जब मिलों की स्थापना समय की हिंसा के सिवाय मिल के लिये और हिंसा न होती हो। परन्तु यह खयाल गलत है। मिलों के नाम पर होने वाली उक्त हिंसा, सदा होती रहती है, कभी बन्द नहीं होती। क्योंकि मिल में नई नई मशीनों की आवश्यकता सदा हुआ करती है। एञ्जिन सदा भभका करता है। पट्टे सदा टूटते रहते हैं और नये बनते रहते हैं। चर्बी की आवश्यकता भी कभी नहीं मिटती। मतलब यह कि ऊपर जो हिंसा बताई गई है, वह एक ही समय होकर नहीं रह जाती, किन्तु सदा हुआ करती है। मजदूर भी काम करते ही रहते हैं, काम करते हुए उनकी आयु भी कम होती ही है और मिलों के न होने पर कपड़े की जो आय बहुत से लोगों को मिलती, वह आय सदा ही छिना करती है। दूसरे कदाचित यह

मान भी लिया जावे कि मिल के लिये एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा एक बार जो होना थी, वह हो गई, मिल बन जाने के बाद वह हिंसा नहीं होती, और इस तरह मिल की हिंसा बहुत से लोगों में बट जाती है, तो हम पूछते हैं कि क्या जैनधर्म इस बात का समर्थन कर सकता है? एक बहुत बड़े धनवान को मार कर उसकी सम्पत्ति बहुत लोगों में बाँट लेना, क्या जैन धर्मानुसार न्यायोचित है? इस सम्पत्तिवान की हिंसा का पाप भी बहुत लोगों में बँट जाता है, अतः क्या जैन धर्मानुयायी किसी भी रूप में इस हिंसा का समर्थन कर सकते हैं? यदि नहीं, तो फिर मिल के विषय में यह कैसे कहा जा सकता है कि उसकी हिंसा बहुतों में बट जाती है।

दूसरा प्रश्न यहां पर यह होता है कि मिल के विषय में जो हिंसा बताई गई है वह हिंसा तो गृहस्थों से सदा होती ही रहती है। जैसे बर्तन आदि के लिये पृथ्वी काय की हिंसा होती ही है। उन बर्तनों के ढालने बनाने आदि में अग्नि-काय जल काय वायु काय, वनस्पति-काय आदि की हिंसा होती है और यदि मिल न हों, तो चर्खे द्वारा सूत कात कर कपड़ा बनाने में भी वायु काय तथा वनस्पति काय की हिंसा होती है। ऐसी दशा में केवल मिल की ही हिंसा, कैसे बुरी हो सकती है और जब तक हम गृहस्थी हैं, जब तक हमने आरम्भ समारम्भ का सर्वथा त्याग नहीं किया है, तब तक हम इस प्रकार की हिंसा से कैसे बच सकते हैं।

पहिले तो हम यह पूछते हैं कि जैन धर्म का उद्देश्य हिंसा

को बढ़ाना है या घटाना ? यदि जैन धर्म का उद्देश्य हिंसा को बढाना ही है, तब तो कुछ कहना ही व्यर्थ है, लेकिन जैन धर्म का उद्देश्य हिंसा को बढ़ाना नहीं किन्तु कम करना और शनै शनै बिल्कुल अहिंसक बना देना है। इसीलिये लोग घर बार आदि छोड़ कर साधु बनते हैं, कि हम से जरा भी हिंसा न हो। ऐसी दशा में मिल की हिंसा का समर्थन करना कैसे उचित है? रही बरतन और चर्खे की बात। बर्तन या चर्खे की हिंसा गृहस्थी होने के कारण, विवश होकर करना पड़ती है, परन्तु जैन धर्म इस हिंसा का भी समर्थन नहीं करता। वह तो यही कहता है कि यह तुम्हारी कमजोरी है, जो तुम इनके मोहताज हो। यदि तुम घर बार आदि गृहस्थी के झगड़े में न रहो, तो तुम्हें यह हिंसा भी न करनी पड़ेगी। जैन धर्म यद्यपि ऐसा कहता है लेकिन समाज के सब लोग ऐसा नहीं कर सकते, इसलिये विवश होकर यह हिंसा करनी पड़ती है, या इसका समर्थन करना पड़ता है। जैन धर्मानुसार, इस हिंसा को भी घटाना उचित है, न कि इस हिंसा को उदाहरण देकर और हिंसा बढ़ाना। तीसरे, यह हिंसा, मिलों की हिंसा के समान महा हिंसा नहीं है। बर्तन चर्खे आदि के लिये, मिलों की तरह न तो पशु वध ही होता है, न मनुष्य के मरने की ही नौबत आती है और न लाखों करोड़ों मनुष्यों के मुंह से रोटी ही छिनती है। इसके सिवा मिल का आरम्भ, महारम्भ है और चर्खे बर्तन आदि में होने वाला आरम्भ अल्पारम्भ है। महारम्भ और अल्पारम्भ में वैसा ही अन्तर है, जैसा अन्तर माता का दूध पीने और खून पीने में होता है।

चरख आदि के आरम्भ से प्रकृति की स्वाभाविकता नष्ट नहीं होती लेकिन मिलों के आरम्भ से प्राकृतिक शोभा ही नष्ट हो जाती है। बतन और चर्खे प्राय प्रत्येक ग्राम में होते तथा बनाये जाते हैं फिर भी उन ग्रामों की शोभा नष्ट नहीं होती, लेकिन मिल वाले नगरों की तो शोभा ही नष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिये अहमदाबाद को ही देखिये। अहमदाबाद में मिलों का धुआँ सूर्य को इस प्रकार छिपाये रहता है, जैसे बादल। ऐसी दशा में शुद्ध हवा भी वहां से मिल सकती है। वहां दरख्त और इतर वस्त्र भी मिल के धुए से काला हो जाता है। इसलिये मिल का आरम्भ और चर्खे बतन आदि का आरम्भ एक समान नहीं है।

बतन खेती आदि के लिये होने वाली एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा, हमसे तब तक नहीं छूट सकती, जब तक हम इन वस्तुओं को इस्तमाल में लाना न छोड़ दें। हाँ, जब तक हो, ऐसी हिंसा को भी कम करना सब जैन धर्मानुयायियों को अभीष्ट है। यदि हमें कोई ऐसा उपाय मिल जाय, कि जिस में इन एकेन्द्रिय जीवों का हिंसा हुए बिना हमको वसन अन्न आदि मिल जाय, तो हमें यह हिंसा त्याग देने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु मिलों की महा हिंसा को हम त्याग सकते हैं। मिल के बने हुए कपड़े के स्थान पर हम चर्खे के बने हुए कपडे से काम ले सकते हैं। हिंसा तो चर्खे में भी होती है परन्तु वायु काय के जीवों की। मिलों की तरह पचेन्द्रिय जीवों की नहीं। चर्खे में न तो चमड़े की ही आवश्यकता होती है, न चर्बी की ही और न मनुष्यों के मरने की ही। इस प्रकार चर्खे में परिश्रम

करने वाले बहुत से मनुष्यों को रोटी मिलती है, यह नहीं होता कि परिश्रम न करके भी हजारों लाखों की रोटी एक ही आदमी हड़प बैठे।

सारांश यह कि मिल के बने हुए कपड़े पहिनने में हिंसा नहीं तो हिंसा का समर्थन अवश्य होता है और वह भी विशेषतः पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा का। इस प्रकार मिल के कपड़े पहिनने में जैन धर्म का मूल सिद्धान्त, जैन धर्मानुयायियों का मूलव्रत अहिंसा का उल्लंघन होता है।

जैन धर्म का दूसरा सिद्धान्त और जैन धर्मानुयायियों का दूसरा व्रत 'सत्य' है। अब हम यह देखते हैं, कि मिल के कपड़े पहिनने में 'सत्य' का उल्लंघन तो नहीं होता।

सत्य का पालन करने के लिये झूठ का त्याग करना होता है। अप्रामाणिक या दूसरे को अनावश्यक दुःख पहुंचाने वाले कार्य विचार और बात का नाम ही झूठ है। मिल का कपड़ा पहिनने के कार्य में, ऊपर बताया जा चुका है कि कितने जीवों को कष्ट होता है, इसलिये मिल का कपड़ा पहिनने वाले झूठ का सेवन नहीं करते तो कम-से-कम झूठ का समर्थन अवश्य करते हैं। इस प्रकार मिल का कपड़ा पहिनने के कारण जैन धर्म के दूसरे सिद्धान्त और दूसरे व्रत का भी उल्लंघन होता है।

जैन धर्म का तीसरा सिद्धान्त, और जैन धर्मानुयायियों का तीसरा व्रत 'अस्तेय' है। अस्तेय का अर्थ है चोरी का अभाव। दूसरे के स्वत्वों को हरण करने का नाम ही चोरी है

लेकिन मिल के वस्त्रों में अधिक ममत्व यानी महाममत्व है। यदि मिल के वस्त्रों पर जितना ममत्व होता है, उतना ही ममत्व खादी में भी होता, तो मिल के वस्त्र पहनने वाले लोग मिल के वस्त्र छोड़ कर खादी ही पहनते। लेकिन मिल के वस्त्रों के लिये हजारों स्त्री पुरुष को जेल जाते देख कर भी, पहिनने वालों से मिल के वस्त्र नहीं छूटते, इससे प्रकट है कि मिल के वस्त्रों में महाममत्व है।

सारांश यह कि मिल के कपड़े पहनने वाले जैनसमाज लम्बा, जैन धर्म के पाचों सिद्धान्तों का, तथा अपने पांचों व्रत का उल्लंघन करते हैं। इसलिये यह कहने में कोई हर्ज नहीं है, कि मिल के कपड़े पहनने वाले लोग जैन धर्म के सिद्धान्त के पालन वाले नहीं हैं। क्योंकि जिस में पांच व्रतों में से एक भी व्रत नहीं है जो पाप या पुण्य को भी नहीं जानता, जो महाहिंसा होते देख कर भी प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष रूप में उस महाहिंसा का समर्थन करता है, उस वढ़ाने में सहायता देता है, वह जैन धर्म का पालन वाला कैसे हो सकता है? शराब खोरी, रण्डीबाजी, मांस भक्षण आदि बढ़ाने के लिये, हजारों लाखों को रोटी छिनाने के लिये और बहुत समय तक जाने वालों की जीवन लीला थोड़े ही समय में समाप्त कराने के लिये, जैन धर्मानुयायी मिल के वस्त्र कदापि न पहिनेगा, और यदि पहिने तो वह जैन धर्म को कलङ्कित करने वाला है।

भारतवासियों को सन्देश

(तर्ज मेर मीला की)

भूखों मरते स्वभाई बचाओ सजन।
अपने क्रोडों रुपये बचाओ सजन ॥ टेर ॥

चार कोटि भारती हर रोज हैं भूखो मरें।
चाइस कोटि एक वारी पेट हा ? अपना भरें ॥
कैसी बुरी अवस्था है सोचो सजन ॥ भूखों० ॥१॥

तेतीस कोटि में यहा छाईम कोटि इस कदर।
भूख पीड़ित फिर रहे हैं पेट खातिर दर बदर ॥
कैसे रक्षा हो मार्ग बताओ सजन ॥ भूखों० ॥२॥

ये भूख पीड़ित व दुखी होत विधर्मी है अहा ?
इनकी बदौलत देश-जाति-धर्म गिरता जा रहा ॥
इसमें मुख्य निमित्त विचारो सजन ॥ भूखों० ॥३॥

जब से विदेशी आगई अन्याय भी होने लगे।
तब से गुलामी छागई फिर दुख हा ! पाने लगे ॥
इस श्राप जरा न भुलाओ सजन। भूखों० ॥४॥

जीना तथा मरना विदेशी के सहारे हो गया।
देशी विदेशी रूप में पल्टा हमारा हो गया ॥
ऐसा जीवन कैसे बिताओ सजन ॥ भूखों० ॥५॥